चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति (ज्योतिषगणराजप्रज्ञप्ति) का पर्यवेक्षण

अनुयोग प्रवर्तक मुनि श्री कन्हैया लाल "कमल"

सामान्य अन्तर के अतिरिक्त चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति सर्वथा समान हैं इसलिए एक के परिचय से दोनों का परिचय स्वतः हो जाता है।

उपांगद्वय-परिचय :—

संकलनकर्ता द्वारा निर्धारित नाम—ज्योतिषगणराजप्रज्ञप्ति है।

प्रारम्भ में संयुक्त प्रचलित नाम – चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति रहा होगा। बाद में उपांगद्वय के रूप में विभाजित नाम—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति हो गए जो अभी प्रचलित हैं।

प्रत्येक प्रज्ञप्ति में बीस प्राभृत हैं और प्रत्येक प्रज्ञप्ति में १०८ सूत्र हैं।

तृतीय प्राभृत से नवम् प्राभृत पर्यन्त अर्थात् सात प्राभृतों में और ग्यारहवें प्राभृत से बीसवें प्राभृत पर्यन्त अर्थात् दस प्राभृतों में 'प्राभृत-प्राभृत" नहीं है।

केवल प्रथम, द्वितीय और दसवें प्राभृत में "प्राभृत-प्राभृत" है।

संयुक्त संख्या के अनुसार सत्रह प्राभृतों में प्राभृत-प्राभृत नहीं है। केवल तीन प्राभृतों में प्राभृत-प्राभृत हैं।

उपलब्ध चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति का विषयानुक्रम वर्गीकृत नहीं है। यदि इनके विकीर्ण विषयों का वर्गीकरण किया जाए तो जिज्ञासु जगत् अधिक से अधिक लाभान्वित हो सकता है।

वर्गीकृत विषयानुक्रम :—

चन्द्रप्रज्ञप्ति के विषयानुक्रम की रूपरेखा—

१. चन्द्र का विस्तृत स्वरूप
२. चन्द्र का सूर्य से संयोग
३. चन्द्र का ग्रह से संयोग
४. चन्द्र का नक्षत्रों से संयोग
५. चन्द्र का ताराओं से संयोग

सूर्यप्रज्ञप्ति के विषयानुक्रम की रूपरेखा—

१. सूर्य का विस्तृत स्वरूप
२. सूर्य का चन्द्र से संयोग
३. सूर्य का ग्रहों से संयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. सूर्य का नक्षत्रों से संयोग
५. सूर्य का ताराओं से संयोग

सूर्य-चन्द्रप्रज्ञप्ति के सूत्रों का विवरण :—

(अ) १. चन्द्र, सूर्य के संयुक्त सूत्र
२. चन्द्र, सूर्य, ग्रह के संयुक्त सूत्र
३. चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र के संयुक्त सूत्र
४. चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, ताराओं के संयुक्त सूत्र

(ब) १. ग्रहों के सूत्र
२. नक्षत्रों के सूत्र
३. ताराओं के सूत्र

(स) १. काल के भेद-प्रभेद
२. अहोरात्र के सूत्र
३. संवत्सर के सूत्र
४. औपमिक काल के सूत्र
५. काल और क्षेत्र के सूत्र

दोनों प्रज्ञप्तियों की निर्युक्ति आदि व्याख्याएं :—

द्वादश उपांगों के वर्तमान मान्यक्रम में चन्द्रप्रज्ञप्ति छठा और सूर्यप्रज्ञप्ति सातवाँ उपाग है —इसलिए आचार्य मलयगिरि ने पहले चन्द्रप्रज्ञप्ति की वृत्ति और बाद में सूर्यप्रज्ञप्ति की वृत्ति रची होगी ?

यदि आचार्य मलयगिरि कृत चन्द्रप्रज्ञप्ति-वृत्ति कहीं से उपलब्ध है तो उसका प्रकाशन हुआ है या नहीं ? या अन्य किसी के द्वारा की गई निर्युक्ति, चूर्णि या टीका प्रकाशित हो तो अन्वेषणीय है।

आचार्य मलयगिरि ने सूर्यप्रज्ञप्ति की वृत्ति में लिखा है सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति नष्ट हो गई है[1] अतः गुरु कृपा से वृत्ति की रचना कर रहा हूँ[2]।

नामकरण और विभाजन :—

सभी अंग-उपांगों के आदि या अन्त में कहीं न कहीं उनके नाम उपलब्ध हैं किन्तु इन दोनों उपांगों की उत्थानिका या उपसंहार में चन्द्रप्रज्ञप्ति या सूर्यप्रज्ञप्ति का नाम क्यों नहीं है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

दो उपांगों के रूप में इनका विभाजन कब और क्यों हुआ ? यह शोध का विषय है।

ग्रह, नक्षत्र, तारा ज्योतिषी देव हैं-इनके इन्द्र है चन्द्र-सूर्य–ये दोनों ज्योतिषगणराज हैं।

---

१. अस्या निर्युक्तिरभूत, पूर्वं श्री भद्रबाहुसूरि कृता।
कलिदोषात् साऽनेशद् व्याचक्षे केवलं सूत्रम्॥

२ सूर्यप्रज्ञप्तिमहं गुरूपदेशानुसारतः किञ्चित्।
विवृणोमि यथाशक्ति स्पष्टं स्वपरोपकाराय॥ सूर्य० प्र० वृत्ति० प्र०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्थानिका और उपसंहार के गद्य-पद्य सूत्रों में "ज्योतिषगणराजप्रज्ञप्ति" नाम ही उपलब्ध है किन्तु इस नाम से ये उपांग प्रख्यात न होकर चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति नाम से प्रख्यात हुए हैं।

"ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति" के संकलनकर्ता ग्रन्थ के प्रारम्भ में "ज्योतिषगण-राज-प्रज्ञप्ति" इस एक नाम से की गई स्वतन्त्र संकलित कृति को ही कहने की प्रतिज्ञा करता है।

इसका असंदिग्ध आधार चन्द्रप्रज्ञप्ति के प्रारम्भ में दी हुई तृतीय और चतुर्थ गाथा है[1]।

इसी प्रकार चन्द्र और सूर्यप्रज्ञप्ति के अन्त में दी हुई प्रशस्ति गाथाओं में से प्रथम गाथा के दो पदों में[2] संकलनकर्ता ने कहा है --"इस भगवती ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति का मैंने उत्कीर्तन किया है।

इस ग्रंथ के रचयिता ने कहीं यह नहीं कहा कि "मैं चन्द्रप्रज्ञप्ति या सूर्यप्रज्ञप्ति का कथन करूँगा, किन्तु ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति" यही एक नाम इसके रचयिता ने स्पष्ट कहा है, इस सन्दर्भ में यह प्रमाण पर्याप्त है।

यह उपांग एक उपांग के रूप में कब से माना गया है? और इसके दो अध्ययनों अथवा दो श्रुतस्कन्धों को दो उपांगों के रूप में कब से मान लिया गया? ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में क्या कहा जाय।

ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति के संकलनकर्ता :

प्रश्न उठता है--"ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति" के संकलनकर्ता कौन थे?

इस प्रश्न का निश्चित समाधान सम्भव नहीं है, क्योंकि संकलनकर्ता का नाम कहीं उपलब्ध नहीं है।

"चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति को कुछ ने गणधरकृत लिखा है। संभव है इसका आधार चन्द्रप्रज्ञप्ति के प्रारम्भ की चतुर्थ गाथा[3] को मान लिया गया है। किन्तु इस गाथा से यह गौतमगणधरकृत है" यह कैसे सिद्ध हो सकता है?

इसके संकलनकर्ता कोई पूर्वधर या श्रुतधर स्थविर हैं जो यह कह रहे हैं कि "इन्द्रभूति" नाम के गौतम गणधर भगवान् महावीर की तीन योग से वंदना करके "ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति" के सम्बन्ध में पूछते हैं।

इस गाथा में 'पुच्छइ" क्रिया का प्रयोग अन्य किसी संकलनकर्ता ने किया है।

---

१. गाहाओ—

फुड-वियड-पागडत्थं, वुच्छ पुव्वसुय-सार-णिस्संदं ॥
सुहुमं गणिणोवइट्ठं, जोइसगणराय-पण्णत्ति ॥
नामेण इंदभूइत्ति, गोयमो वंदिऊण तिविहेणं ॥
पुच्छइ जिणवरवसहं, जोइसरायस्स पण्णत्ति ॥४॥

२. गाहा—

इय एस पागडत्था, अभव्वजणहियय-दुल्लभा इणमो ॥
उक्कित्तिया भगवती, जोइसरायस्स पण्णत्ति ॥१॥

३. नामेण इंदभूइत्ति, गोयमो वंदिउण तिविहेणं ॥
पुच्छइ जिणवरवसहं, जोइसरायस्सपण्णत्ति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति का संकलन काल :—

भगवान् महावीर और निर्युक्तिकार भद्रबाहु—इन दोनों के बीच का समय इस ग्रन्थराज का संकलन काल कहा जा सकता है क्योंकि भद्रबाहुकृत "सूर्यप्रज्ञप्ति की निर्युक्ति" वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि के पूर्व ही नष्ट हो गई थी ऐसा वे सूर्यप्रज्ञप्ति की वृत्ति में स्वयं लिखते हैं।

ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति एक स्वतन्त्र कृति है :

संकलनकर्ता चन्द्रप्रज्ञप्ति की द्वितीय गाथा[1] में पाँच पदों को वंदन करता है और तृतीय गाथा[2] में वह कहता है कि "पूर्वश्रुत का सार निष्पन्दन-झरणा" रूप स्फुट-विकट सूक्ष्म गणित को प्रगट करने के लिए "ज्योतिषगण-राज-प्रज्ञप्ति" को कहूँगा इससे स्पष्ट ध्वनित होता है—यह एक स्वतन्त्र कृति है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति के प्रत्येक सूत्र के प्रारम्भ में "ता" का प्रयोग है। यह "ता" का प्रयोग इसको स्वतन्त्र कृति सिद्ध करने के लिए प्रबल प्रमाण है।

इस प्रकार का "ता" का प्रयोग किसी भी अंग-उपांगों के सूत्रों में उपलब्ध नहीं है।

चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति के प्रत्येक प्रश्नसूत्र के प्रारम्भ में 'भंते!' का और उत्तर सूत्र के प्रारम्भ में "गोयमा" का प्रयोग नहीं है जबकि अन्य अंग-उपांगों के सूत्रों में "भंते और गोयमा" का प्रयोग प्रायः सर्वत्र है, अतः यह मान्यता निर्विवाद है कि "यह कृति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र संकलित कृति है।

ग्रन्थ एक उत्थानिकायें दो :

ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति की एक उत्थानिका चन्द्रप्रज्ञप्ति के प्रारम्भ में दी हुई गाथाओं की है और दूसरी उत्थानिका गद्य सूत्रों की है।

इन उत्थानिकाओं का प्रयोग विभिन्न प्रतियों के सम्पादकों ने विभिन्न रूपों में किया है:—

१. किसी ने दोनों उत्थानिकायें दी हैं।

२. किसी ने एक गद्य सूत्रों की उत्थानिका दी है।

३. किसी ने एक पद्य-गाथाओं की उत्थानिका दी है।

इसी प्रकार प्रशस्ति गाथायें चन्द्रप्रज्ञप्ति के अन्त में और सूर्यप्रज्ञप्ति के अन्त में भी दी है। जबकि ये गाथायें ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति के अन्त में दी गई थीं।

संभव है ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति को जब दो उपांगों के रूप में विभाजित किया गया होगा, उस समय दोनों उपांगों के अन्त में समान प्रशस्ति गाथायें दे दी गई।

---

१. नमिऊण सुर-असुर-गरुल-भुसगपरि वंदिए गयकिलेसे ॥
अरिहे सिद्धायरिए उवज्झाय सव्वसाहू य ॥२॥

२. फुड-वियड-पागडत्थ. वुच्छं पुव्वसुय-सार णिस्संद ॥
सुहुमं गणिणोवइट्ठं, जोइसगणराय-पण्णत्ति ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति की संकलन शैली का वैचित्र्य :--

चिर अतीत में ज्योतिष-राज-प्रज्ञप्ति का संकलन किस रूप में रहा होगा ? यह तो आगम-साहित्य के इतिहास-विशेषज्ञों का विषय है किन्तु वर्तमान में उपलब्ध चन्द्रप्रज्ञप्ति तथा सूर्यप्रज्ञप्ति के प्रारम्भ में दी गई विषय-निर्देशक समान गाथाओं में प्रथम प्राभृत का प्रमुख विषय "सूर्य मण्डलों में सूर्य की गति का गणित" सूचित किया गया है, किन्तु दोनों उपांगों का प्रथम सूत्र मूहूर्तों की हानि-वृद्धि का है।

सूर्य सम्बन्धी गणित और चन्द्र सम्बन्धी गणित के सभी सूत्र यत्र-तत्र विकीर्ण हैं। ग्रह-नक्षत्र और ताराओं के सूत्रों का भी व्यवस्थित क्रम नहीं है। अतः आगमों के विशेषज्ञ सम्पादक, श्रमण या सद्गृहस्थ इन उपांगों को आधुनिक सम्पादन शैली से सम्पादित करें तो गणित ज्ञान की आशातीत वृद्धि हो सकती है।

प्रथम प्राभृत के पाँचवें प्राभृत-प्राभृत में दो सूत्र हैं। सोलहवें सूत्र में सूर्य की गति के सम्बन्ध में अन्य मान्यताओं की पाँच प्रतिपत्तियाँ हैं और सत्रहवें सूत्र में स्वमान्यता का प्ररूपण है।

इस प्रकार अन्य मान्यताओं का और स्वमान्यता का दो विभिन्न सूत्रों में निरूपण अन्यत्र नहीं है।

संकलन काल की दुविधा :

गणधर अंग आगमों को सूत्रागमों के रूप में पहले संकलित करता है और श्रुतधर स्थविर उपांगों को बाद में संकलित करते हैं। संकलन का यह कालक्रम निर्विवाद है।

अंग आगमों को संकलित करने वाला गणधर एक होता है और उपांग आगमों को संकलित करने वाले श्रुतधर विभिन्न काल में विभिन्न होते हैं अतः उनकी धारणायें तथा संकलन पद्धति समान होना संभव नहीं है।

स्थानांग अंग आगम है। इसके दो सूत्रों में[1] चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति के नामों का निर्देश दुविधा-जनक है क्योंकि स्थानांग के पूर्व चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति का संकलन होने पर ही उनका उसमें निर्देश संभव हो सकता है।

इस विपरीत धारणा के निवारण के लिए बहुश्रुतों को समाधान प्रस्तुत करना चाहिए किन्तु समाधान प्रस्तुत करने से पूर्व उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह संक्षिप्त वाचना की सूचना नहीं है--ये दोनों अलग-अलग सूत्र हैं।

नक्षत्र गणनाक्रम में परस्पर विरोध है ?

चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति के दशम-प्राभृत के प्रथम प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्र गणनाक्रम की स्वमान्यता का प्ररूपण है--तदनुसार अभिजित् से उत्तराषाढ़ा पर्यन्त २८ नक्षत्रों का गणना क्रम है किन्तु स्थानांग अ. २, उ. ३, सूत्रांक ९५ में तीन गाथाएँ नक्षत्र गणना क्रम की हैं और यही तीन गाथाएँ अनुयोग द्वार के उपक्रम विभाग में सूत्र १८५ में हैं।

---

१. क—स्थानांग अ. ३, उ. २, सू. १६०।

ख—स्थानांग अ. ४, उ. १, सू. २७७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानांग अंग आगम है—इसमें कहा गया नक्षत्र गणनाक्रम यदि स्वमान्यता के अनुसार है तो सूर्यप्रज्ञप्ति में कहे गए नक्षत्र गणनाक्रम को स्वमान्यता का कैसे माना जाय ? क्योंकि उपांग की अपेक्षा अंग आगम की प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध है।

यदि स्थानांग में निर्दिष्ट नक्षत्र गणनाक्रम को किसी व्याख्याकर ने अन्य मान्यता का मान लिया हो तो परस्पर विरोध निरस्त हो जाता है।

प्राभृत पद का परमार्थ[1] :

सूर्यप्रज्ञप्ति-वृत्ति के अनुसार प्राभृत शब्द के अर्थ—

इष्ट पुरुष के लिए देश-काल के योग्य हितकर दुर्लभ वस्तु अर्पित करना।

अथवा जिस पदार्थ से मन प्रसन्न हो ऐसा पदार्थ इष्ट पुरुष को अर्पित करना ये दोनों शब्दार्थ हैं।

चन्द्र सूर्यप्रज्ञप्ति से सम्बन्धित अर्थ —

विनयादि गुण सम्पन्न शिष्यों के लिए देशकालोपयोगी शुभफलप्रद दुर्लभ ग्रन्थ स्वाध्याय हेतु देना।

यहाँ "देशकालोपयोगी" विशेषण विशेष ध्यान देने योग्य है।

कालिक और उत्कालिक

नन्दीसूत्र में गमिक को "उत्कालिक" और आगमिक को "कालिक" कहा है।

---

१. क—अथ प्राभृतमिति का शब्दार्थ ?

उच्यते—इह प्राभृतं नाम लोके प्रसिद्धं यदभीष्टाय पुरुषाय देश-कालोचितं दुर्लभ-वस्तु-परिणामसुन्दरमुपनीयते।

ख—प्रकर्षेण आसमन्ताद् भ्रियते-पोष्यते चित्तमभीष्टस्य पुरुषस्यानेनेति प्राभृतम्।

ग—विवक्षिता अपि च ग्रन्थपद्धतयः परमदुर्लभा परिणामसुन्दरा श्वाभीष्टेभ्योविनयादिगुण-कलितेभ्यः शिष्येभ्यो देश-कालो चित्येनीपनोयन्ते।

सूर्य० सू० ६ वृत्ति० पत्र ७ का पूर्वभाग

श्वेताम्बर परम्परा में चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति के अध्ययन आदि विभागों के लिए "प्राभृत" शब्द प्रयुक्त है।

दिगम्बर परम्परा के कषायपाहुड आदि सिद्धान्त ग्रन्थों के लिए "पाहुड" शब्द के विभिन्न अर्थ।

१—जिसके पदस्फुट—व्यक्त है वह "पाहुड कहा जाता है।

२—जो प्रकृष्ट पुरुषोत्तम द्वारा आभृत—प्रस्थापित है वह "पाहुड" कहा जाता है।

३—जो प्रकृष्ट ज्ञानियों द्वारा आभृत—धारण किया गया है अथवा परम्परा से प्राप्त किया गया है वह "पाहुड', कहा जाता है।

जैनेन्द्र सिद्धान्तकोष से उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिवाद गमिक है[१] दृष्टिवाद का तृतीय विभाग पूर्वगत है[२] उसी पूर्वगत से ज्योतिष गण-राज-प्रज्ञप्ति (चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति) का निर्यूहण किया गया है, ऐसा चन्द्रप्रज्ञप्ति की उत्थानिका की तृतीय गाथा से ज्ञात होता है।

अंग-उपांगों का एक दूसरे से सम्बन्ध है, ये सब आगमिक हैं अतः वे सब कालिक हैं।

उसी नन्दी सूत्र के अनुसार चन्द्रप्रज्ञप्ति कालिक है[३] और सूर्यप्रज्ञप्ति उत्कालिक है[४]।

चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति के कतिपय गद्य-पद्य सूत्रों के अतिरिक्त सभी सूत्र अक्षरशः समान हैं अतः एक कालिक और एक उत्कालिक किस आधार पर माने गए हैं ?

यदि इन दोनों उपांगों में से एक कालिक और एक उत्कालिक निश्चित है तो "इनके सभी सूत्र समान नहीं थे" यह मानना ही उचित प्रतीत होता है, काल के विकराल अन्तराल में इन उपांगों के कुछ सूत्र विच्छिन्न हो गए और कुछ विकीर्ण हो गए हैं।

मूल अभिन्न और अर्थ अभिन्न

चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति के मूल सूत्रों में कितना साम्य है ? यह तो दोनों के आद्योपान्त अवलोकन से स्वतः ज्ञात हो जाता है—किन्तु चन्द्रप्रज्ञप्ति के सभी सूत्रों की चन्द्र परक व्याख्या और सूर्यप्रज्ञप्ति के सभी सूत्रों की सूर्य परक व्याख्या अतीत में उपलब्ध थी। यह कथन कितना यथार्थ है ? कहा नहीं जा सकता है, क्योंकि ऐसा किसी टीका निर्युक्ति आदि में कहीं कहा नहीं है।

यदि इस प्रकार का उल्लेख किसी टीका-निर्युक्ति आदि में देखने में आया हो तो प्रकाशित करें।

एक के अनेक अर्थ असंभव नहीं

एक श्लोक या एक गाथा के अनेक अर्थ असम्भव नहीं हैं। द्विसंधान, पंचसंधान, सप्तसंधान आदि काव्य वर्तमान में उपलब्ध हैं। इनमें प्रत्येक श्लोक की विभिन्न कथा परक टीकायें देखी जा सकती हैं। किन्तु चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति के सम्बन्ध में बिना किसी प्रबल प्रमाण के भिन्नार्थ कहना उचित प्रतीत नहीं होता।

विरोध भी, व्यवहार भी

ज्योतिषशास्त्र निमित्त शास्त्र माना गया है। इसका विशेष शुभाशुभ जानने में सफल हो सकता है।

मानव की सर्वाधिक जिज्ञासा भविष्य जानने की होती है क्योंकि वह इष्ट का संयोग एवं कार्य की सिद्धि चाहता है।

---

१. नन्दीसूत्र गमिक आगमिक श्रुत सूत्र ४४
२. नदीसूत्र दृष्टिवाद श्रुत सूत्र ९०
३. नन्दीसूत्र उत्कालिक श्रुत सूत्र ४४
४. नन्दीसूत्र कालिक श्रुत सूत्र ४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति ज्योतिष विषय के उपांग है—यद्यपि इनमें गणित अधिक है और फलित अत्यल्प है फिर भी इनका परिपूर्ण ज्ञाता शुभाशुभ निमित्त का ज्ञाता माना जाता है—यह धारणा प्राचीन काल से प्रचलित है।

ग्रह-नक्षत्र मानवमात्र के भावी के द्योतक हैं अतएव इनका मानव जीवन के साथ व्यापक सम्बन्ध है।

निमित्त शास्त्र के प्रति जो मानव की अगाध श्रद्धा है वह भी ग्रह-नक्षत्रों के शुभाशुभ प्रभाव के कारण ही है।

श्रमण समाचारी के अनुसार निमित्त शास्त्र का उपयोग या प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है—अतएव निमित्त का प्रयोक्ता "पापश्रमण"[1] एवं आसुरी भावना वाला[2] माना गया है।

जन्म, जरा, मरण से त्राण देने में निमित्त शास्त्र का ज्ञान सर्वथा असमर्थ है[3]।

ऐसे अनेक निषेधों के होते हुए भी आगमों में निमित्त शास्त्र-सम्बन्धी अनेक सूत्र उपलब्ध है। यथा—

१—ज्ञान वृद्धि करने वाले दश नक्षत्र हैं[4]

२—मानव के सुख-दुःख के निमित्त ग्रह-नक्षत्र हैं[5]

प्रव्रज्यायोग तथा प्रव्रज्या प्रदान के तिथि नक्षत्रादि का विधान भी जैनाचार्यों ने किया है।

अन्तिम तीर्थंकर महावीर के निर्वाण काल में आए हुए भस्मग्रह के भावी परिणामों ने तो भावुक भव्य जनों के मानस पर असीम असर किया है—यह भी निमित्त शास्त्र की ही देन है[6]।

ज्योतिषीदेवों का जीव जगत् से सम्बन्ध

इस मध्यलोक के मानव और मानवेतर प्राणि जगत् से चन्द्र आदि ज्योतिषी देवों का शाश्वत सम्बन्ध है। क्योंकि वे सब इसी मध्यलोक के स्वयं प्रकाशमान देव हैं और वे इस भूतल के समस्त पदार्थों को प्रकाश प्रदान करते रहते हैं।

ज्योतिष लोक और मानव लोक का प्रकाश्य-प्रकाशक भाव सम्बन्ध इस प्रकार है।

चन्द्र शब्द की रचना

चदि आह्लादने धातु से "चन्द्र" शब्द सिद्ध होता है।

चन्द्रमाह्लादं मिमीते निर्मिमीते इति चन्द्रमा

---

१. उत्त० अ० १७, गाथा १८
२. उत्त० अ० ३६, गाथा २६६
३. उत्त० अ० २०, गाथा ४५
४. स्था० अ० १०, सू० ७८१ सम० १०
५. रयणिकर-दिणकराणं, णक्खत्ताणं महग्गहाणं च ॥
चार-विसेसेण भवे सुह-दुक्खविही मणुस्साणं ॥ (सूर्य० प्रा० १० प्रा-प्रा १९ सू०)
६. जीवा० प्रति० ३, सूत्र १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणि जगत् के आह्लाद का जनक चन्द्र है इसलिए चन्द्र दर्शन की परम्परा प्रचलित है।

चन्द्र के पर्यायवाची अनेक हैं उनमें कुछ ऐसे पर्यायवाची हैं जिनसे इस पृथ्वी के समस्त पदार्थों से एवं पुरुषों से चन्द्र का प्रगाढ़ सम्बन्ध सिद्ध है।

कुमुद बान्धव

जलाशयों में प्रफुल्लित कुमुदिनी का बन्धु चन्द्र है इसलिए यह "कुमुद बान्धव" कहा जाता है।

कलानिधि चन्द्र के पर्याय हिमांशु, शुभ्रांशु, सुधांशु की अमृतमयी कलाओं से कुमुदिनी का सीधा सम्बन्ध है।

इसकी साक्षी है राजस्थानी कवि की सूक्ति

दोहा—जल में बसे कुमुदिनी, चन्दा बसे आकाश।
जो जाहु के मन बसे, सो ताहु के पास ॥

औषधीश

जंगल की जड़ी-बूटियाँ "औषधि" हैं—उनमें रोगनिवारण का अद्भुत सामर्थ्य सुधांशु की सुधामयी रश्मियों से आता है।

मानव आरोग्य का अभिलाषी है, वह औषधियों से प्राप्त होता है—इसलिए औषधीश चन्द्र से मानव का घनिष्ट सम्बन्ध है।

निशापति

निशा = रात्रि का पति-चन्द्र है।

श्रमजीवी दिन में "श्रम" करते हैं और रात्रि में विश्राम करते हैं।

आह्लादजनक चन्द्र की चन्द्रिका में विश्रान्ति लेकर मानव स्वस्थ हो जाता है। इसलिए मानव का निशानाथ से अति निकट का सम्बन्ध सिद्ध होता है। जैनागमों में चन्द्र के एक "शशि" पर्याय की ही व्याख्या है[1]।

---

१. ससी सद्दस्स विसिट्ठऽत्थं....

प्र० से केणट्ठेणं भंते। एवं वुच्चइ—चंदे ससी, चंदे ससी ?

उ० गोयमा! चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो मियंके विमाणे, कंता देवा कंता देवा कंताओ, देवीओ कंताइं आसण-सयण-खंभ भंडमत्तोवगरणाइं, अप्पणा वि य णं चंदे जोतिसिंदे जोइसराया सोमे कंते सुभए पियदंसणे सुरूवे, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—"चंदे ससी चंदे ससी"।

भग. सू. १२, उ. ६. सु. ४।

शशि शब्द का विशिष्टार्थ—

प्र० हे भगवन्! चंद्र को "शशि" किस अभिप्राय से कहा जाता है ?

उ० हे गौतम! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र के मृगांक विमान में मनोहर देव, मनोहर देवियाँ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्य शब्द की रचना

षू प्रेरणे धातु से "सूर्य" शब्द सिद्ध होता है।
सुवति-प्रेरयति कर्मणि लोकान् इति सूर्यः।
जो प्राणिमात्र को कर्म करने के लिए प्रेरित करता है वह "सूर्य" है।
"सूरज" ग्रामीण जन "सूर्य" को "सूरज" कहते हैं।
सु + ऊर्ज से सूर्ज या सूरज उच्चारण होता है।
सु श्रेष्ठ—ऊर्ज = ऊर्जा = शक्ति।
सूर्य से श्रेष्ठ शक्ति प्राप्त होती है।

सूर्य के पर्याय अनेक हैं। इनमें कुछ ऐसे पर्याय हैं, जिनसे सूर्य का मानव के साथ सहज सम्बन्ध सिद्ध होता है।

सहस्रांशु :—सूर्य की सहस्र रश्मियों से प्राणियों को जो "उष्मा" प्राप्त होती है, वही जगत् के जीवों का जीवन है।

प्रत्येक मानव शरीर में जब तक उष्मा—गर्मी रहती है, तब तक जीवन है। उष्मा समाप्त होने के साथ ही जीवन समाप्त हो जाता है।

भास्कर, प्रभाकर, विभाकर, दिवाकर, द्युमणि, अहर्पति, भानु आदि पर्यायों से "सूर्य" प्रकाश देने वाला देव है।

मानव की सभी प्रवृत्तियाँ प्रकाश में ही होती हैं। प्रकाश के बिना वह अकिञ्चित् कर है।
सूर्य के ताप से अनेक रोगों की चिकित्सा होती है।
सौर ऊर्जा से अनेक यन्त्र शक्तियों का विकास हो रहा है।
इस प्रकार मानव का सूर्य से शाश्वत सम्बन्ध है।

तथा मनोज्ञ आसन-शयन-स्तम्भ-भाण्ड-पात्र आदि उपकरण हैं और ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र स्वयं भी सौम्य, कान्त, सुभग, प्रियदर्शन एवं सुरूप है।
हे गौतम ! इस कारण से चन्द्र को "शशि" (या सश्री) कहा जाता है।

सूर सद्दस्स विसिट्ठत्थं—

प्र० से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"सूरे आदिच्चे सूरे आदिच्चे" ?

उ० गोयमा ! सूरादीया णं समया इ वा, आवलिया इ वा, जाव ओसप्पिणी इ वा उस्सप्पिणी इ वा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"सूरे आदिच्चे सूरे आदिच्चे।

भग. स. १२, उ. ६, सु. ५

सूर्य शब्द का विशिष्टार्थ—

प्र० हे भगवन् ! सूर्य को "आदित्य" किस अभिप्राय से कहा जाता है ?

उ० हे गौतम ! समय, आवलिका यावत् अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी काल का आदि कारण सूर्य है। हे गौतम ! इस कारण से सूर्य "आदित्य" कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनागमों में सूर्य के एक "आदित्य" पर्याय की व्याख्या द्वारा सभी काल विभागों का आदि सूर्य कहा गया है।

नक्षत्र और नर समूह

नक्षत्र शब्द की रचना :

१. न क्षदते हिनस्ति "क्षद" इति सौत्रो धातु हिंसार्थ आत्मने पदी। ष्ट्रन (उ. ४।१५९) नभ्राण्नपाद् (६।३।७५) इति नञः प्रकृति भावः।

२. णक्ष गतौ (भ्वा. प. से.) नक्षति।
असि-नक्षि-यजि-वधि-पतिभ्यो त्रन् (उ. ३।१०५) प्रत्यये कृते।

३. न क्षणोति क्षणुर्हिसायाम् (त. उ. से. (ष्ट्रन्) उ. ४।१५९) न क्षत्र।

४. न क्षत्रं देवत्वात् क्षत्र भिन्त्वात्।

जो क्षत = खतरे से रक्षा करे वह "क्षत्र" कहा जाता है। उस "क्षत्र" का जो "रक्षा करना" धर्म है वह "क्षात्र धर्म" कहा जाता है। क्षत्र की सन्तान "क्षत्रिय" कही जाती है।

इस भूतल के रक्षक नर "क्षत्र" हैं और नभ आकाश में रहने वाले रक्षक देव "नक्षत्र" हैं। इन नक्षत्रों का नर क्षत्रों से सम्बन्ध नक्षत्र सम्बन्ध है।

अट्ठाईस नक्षत्रों में से "अभिजित्" नक्षत्र को व्यवहार में न लेकर सत्ताईस नक्षत्रों से व्यवहार किया है।

प्रत्येक नक्षत्र के चार चरण हैं अर्थात् चार अक्षर हैं। इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रों के १०८ अक्षर होते हैं।

इन १०८ अक्षरों को बारह राशियों में विभक्त करने पर प्रत्येक राशि के ९ अक्षर होते हैं।

इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रों एवं बारह राशियों के १०८ अक्षरों से प्रत्येक प्राणी एवं पदार्थों के "नाम" निर्धारित किये जाते हैं।

यह नक्षत्र और नर समूह का त्रैकालिक सम्बन्ध है।

चर, स्थिर आदि सात अन्ध, काण आदि चार इन ग्यारह संज्ञाओं से अभिहित ये नक्षत्र प्रत्येक कार्य की सिद्धि आदि में निमित्त होते हैं।

तारा मण्डल

तारा शब्द की रचना :

तारा शब्द स्त्रीलिंग है।

तृ प्लवन-तरणयो-धातु से "तारा" शब्द की सिद्धि होती है। परन्ति अनया इति तारा।

सांयात्रिक जहाजी व्यापारियों के नाविक रात्रि में समुद्र यात्रा तारामण्डल के दिशा बोध से करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्रुव तारा सदा स्थिर रहकर उत्तर दिशा का बोध कराता है। शेष दिशाओं का बोध ग्रह, नक्षत्र और राशियों की नियमित गति से होता रहता है। इसलिए नौका आदि के तिरने में जो सहायक होते हैं वे तारा कहे जाते हैं।

रेगिस्तान की यात्रा रात्रि में सुखपूर्वक होती है इसलिए यात्रा के आयोजक रात्रि में तारा से दिशा बोध करते हुए यात्रा करते हैं।

तारामण्डल के विशेषज्ञ प्रान्त का, देश का शुभाशुभ जान लेते हैं इसलिए ताराओं का इस पृथ्वीतल के प्राणियों से अतिनिकट का सम्बन्ध सिद्ध है।

इस प्रकार चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारें मानव के सुख-दुःख के निमित्त हैं।

ग्रह शब्द की रचना—

ग्रह उपादाने धातु से ग्रह शब्द सिद्ध होता है।

जैनागमों में छः ग्रह और आठ ग्रह का उल्लेख है,[1]

चन्द्र-सूर्य को ग्रहपति माना है, शेष छः को ग्रह माना है राहु-केतु को भिन्न न मानकर एक केतु को ही माना है।

अट्ठासी ग्रह भी माने हैं[2]।

अन्य ग्रन्थों में नौ ग्रह माने गये हैं।

ग्रहों के प्रभाव के सम्बन्ध में वसिष्ठ और वृहस्पति नाम के ज्योतिर्विदाचार्य ने इस प्रकार कहा है।

वसिष्ठ :—

ग्रहा राज्यं प्रयच्छति, ग्रहा राज्यं हरन्ति च।
ग्रहेस्तु व्यापितं सर्वं, त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

वृहस्पति :—

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना नरावराः।
कालं ज्ञानं ग्रहाधीनं, ग्रहाः कर्मफलप्रदाः ॥

३२वां गोचर प्रकरण।

वृहद्दैवज्ञरंजन, पृ० ८४

---

१. छ तारग्गहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सुक्को, २. बुहे, ३. बहस्सति, ४. अंगारके, ५. सणिच्छरे, ६. केतू।

ठाणं अ० ६, सु० ४८१।

२. अट्ठ महग्गहा पण्णत्ता तं जहा—

१. चंदे, २. सूरे, ३. सुक्के, ४. बुहे, ५. बहस्सति, ६. अंगारके, ७. सणिच्छरे, ८. केतू।

ठाणं ८, सु० ६१३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणितानुयोग का गणित सम्यक् श्रुत है

मिथ्याश्रुतों की नामावली में गणित को मिथ्याश्रुत माना है[1], इसका यह अभिप्राय नहीं है कि—"सभी प्रकार के गणित मिथ्याश्रुत हैं।

आत्मशुद्धि की साधना में जो गणित उपयोगी या सहयोगी नहीं है, केवल वही गणित "मिथ्याश्रुत" है ऐसा समझना चाहिए। यहां "मिथ्या" का अभिप्राय "अनुपयोगी" है—झूठा नहीं।

वैराग्य की उत्पत्ति के निमित्तों में लोक भावना अर्थात् लोक स्वरूप का विस्तृत ज्ञान भी एक निमित्त है[2], अतः अधो, मध्य और उर्ध्व लोक से सम्बन्धित सारा गणित "सम्यक्श्रुत" है, क्योंकि यह गणित आजीविका या अन्यान्य सावद्य क्रियाओं का हेतु नहीं हो सकता है।

स्थानांग, समवायांग और व्याख्याप्रज्ञप्ति—इन तीनों अंगों में तथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्र-प्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति—इन तीनों उपांगों में गणित सम्बन्धी जितने सूत्र हैं वे सब सम्यक् श्रुत हैं क्योंकि अंग-उपांग सम्यक् श्रुत है।

अन्य मान्यताओं के उद्धरण :—

स्वमान्यताओं का प्ररूपण :—

चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति में अनेक अन्य मान्यताओं के उद्धरण दिए गए हैं साथ ही स्वमान्यताओं के प्ररूपण भी किए गए हैं।

अन्य मान्यताओं का सूचक "प्रतिपत्ति" शब्द है

चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति में जितनी प्रतिपत्तियां हैं उनकी सबकी सूची इस प्रकार है—

सूर्यप्रज्ञप्ति में प्रतिपत्तियों की संख्या

प्राभृत	प्राभृत-प्राभृत	सूत्र	प्रतिपत्ति संख्या
१	४	१५	६ प्रतिपत्तियां
१	५	१६	५ प्रतिपत्तियां
०	०	१७	स्वमत कथन
१	६	१८	७ प्रतिपत्तियां
१	७	१९	८ प्रतिपत्तियां "एक के समान-स्वमान्यता"
१	८	२०	३ प्रतिपत्तियां
२	१	२१	८ प्रतिपत्तियां
२	२	२२	२ प्रतिपत्तियां
२	३	२३	४ प्रतिपत्तियां
३	०	२४	१२ प्रतिपत्तियां

१. नन्दीसूत्र सूत्र ७७

२. जगत्कायस्वभावी च संवेग—वैराग्यार्थम्

तत्त्वार्थसूत्र अ. ७ सूत्र ७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४	०	२५	१६	प्रतिपत्तियां
५	०	२६	२०	प्रतिपत्तियां
६	०	२७	२५	प्रतिपत्तियां
७	०	२८	२०	प्रतिपत्तियां
८	०	२९	३	प्रतिपत्तियां
९	०	३०	३	प्रतिपत्तियां
०	०	३१	२५	प्रतिपत्तियां
०	०	०	२	प्रतिपत्तियां[1]
०	०	०	९६	प्रतिपत्तियां
१०	१	३२	५	प्रतिपत्तियां
१०	२१	५९	५	प्रतिपत्तियां
१७	०	८८	२५	प्रतिपत्तियां
१८	०	८९	२५	प्रतिपत्तियां
१९	०	१००	१२	प्रतिपत्तियां
२०	०	१०२	२	प्रतिपत्तियां
२०	०	१०३	२	प्रतिपत्तियां

एक व्यापक भ्रान्ति

दोनों उपांगों के दसवें प्राभृत के सत्रहवें प्राभृत-प्राभृत में प्रत्येक नक्षत्र का पृथक्-पृथक् भोजन विधान है।

---

१. क—इन प्रतिपत्तियों के पूर्व के प्रश्नसूत्र विच्छिन्न हैं।

ख—इन प्रतिपत्तियों के बाद स्वमत प्रतिपादक सूत्रांश भी विच्छिन्न है।

उपांगद्वय के संकलनकर्ता ने प्रतिपत्तियों के जितने उद्धरण दिए हैं उनके प्रमाणभूत मूल ग्रन्थों के नाम ग्रन्थकारों के नाम अध्याय, श्लोक, सूत्रांक आदि नहीं दिए हैं।

बहुश्रुतों का कर्तव्य :

उपांगद्वय में उद्धृत प्रतिपत्तियों के स्थल निर्देश करना प्रमाणभूत ग्रन्थ से प्रतिपत्ति की मूल वाक्यावली देकर अन्य मान्यता का निरसन करना और स्वमान्यताओं का युक्तिसंगत प्रतिपादन करना इत्यादि आधुनिक पद्धति की सम्पादन प्रक्रिया से सम्पन्न करके उपांग द्वय को प्रस्तुत करना।

अथवा—किसी शोध संस्थान के माध्यम से चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति पर विस्तृत शोध निबन्ध लिखवाना।

किसी योग्य श्रमण-श्रमणी या विद्वान् को शोध निबन्ध के लिए उत्साहित करना।

शोध निबन्ध लेखन के लिए आवश्यक ग्रन्थादि की व्यवस्था करना।

शोध निबन्ध लेखक का सम्मान करना।

ये सब श्रुतसेवा के महान् कार्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें मांस भोजन के विधान भी हैं।

इन्हें देखकर सामान्य स्वाध्यायी के मन में एक आशंका उत्पन्न होती है।

ये दोनों उपांग आगम हैं—इनमें ये मांस भोजन के विधान कैसे हैं?

यह आशंका अज्ञात काल से चली आ रही है।

सूर्यप्रज्ञप्ति के वृत्तिकार मलयगिरि ने भी इन मांस भोजन विधानों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का ऊहापोह या स्पष्टीकरण नहीं किया है।

एक कृत्तिका नक्षत्र के भोजन विधान की व्याख्या करके शेष नक्षत्रों के भोजन कृत्तिका के समान समझने की सूचना दी है।

शेष नक्षत्रों के भोजन विधानों की व्याख्याएँ न करने के सम्बन्ध में यह कल्पना है कि—मांसवाची शब्दों की व्याख्या क्या की जाय?

अथवा मांसवाची भोजनों को वनस्पतिवाची सिद्ध करने की क्लिष्ट कल्पना करना उन्हें उचित नहीं लगा होगा? या उस समय ऐसी कोई परम्परागत धारणा रही न होगी?

स्व० पूज्य श्रीघासीलालजी म० ने सभी मांसवाची भोजनों को वनस्पतिवाची सिद्ध करने का प्रयास किया है।

स्पष्टीकरण

जैनागमों में नक्षत्र गणना का क्रम अभिजित से प्रारम्भ होकर उत्तराषाढ़ा पर्यन्त का है।

प्रस्तुत प्राभृत के इस सूत्र में नक्षत्र का क्रम कृत्तिका से प्रारम्भ होकर भरणी पर्यन्त का है[1],

---

१. चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति के संकलनकर्ता श्रुतधर स्थविर ने नक्षत्र गणना क्रम की पाँच विभिन्न मान्यताओं का निरूपण करके स्वमान्यता का प्ररूपण किया है।

पाँच अन्य मान्यताओं का निरूपण—

अट्ठाईस नक्षत्रों का गणना क्रम—

१. कृत्तिका नक्षत्र से भरणी नक्षत्र पर्यन्त २८ नक्षत्र
२. मघा नक्षत्र से अश्लेषा नक्षत्र पर्यन्त २८ नक्षत्र
३. धनिष्ठा नक्षत्र से श्रवण नक्षत्र पर्यन्त २८ नक्षत्र
४. अश्विनी नक्षत्र से रेवती नक्षत्र पर्यन्त २८ नक्षत्र
५. भरणी नक्षत्र से अश्विनी नक्षत्र पर्यन्त २८ नक्षत्र

स्वमान्यता का प्ररूपण—

अभिजित नक्षत्र से उत्तराषाढ़ा नक्षत्र पर्यन्त २८ नक्षत्र

चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति दशम प्राभृत
प्रथम प्राभृत-प्राभृत सूत्रांक ३२

नक्षत्र गणना क्रम के इस विधान से यह स्पष्ट है कि दशम प्राभृत व सप्तदशम प्राभृत-प्राभृत में निरूपित नक्षत्र भोजन विधान सूर्यप्रज्ञप्ति के संकलनकर्ता की स्वमान्यता का नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध अनेक ज्योतिष ग्रन्थों में भी यह नक्षत्र गणना का क्रम विद्यमान है—अतः यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत नक्षत्र-भोजन-विधान का क्रम अन्य किसी ज्योतिष ग्रन्थ से उद्धृत है[1],

---

आश्चर्य यह है कि अब तक सम्पादित एवं प्रकाशित चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्तियों के अनुवादकों आदि ने इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण लिखकर व्यापक भ्रान्ति के निराकरण के लिए सत्साहस नहीं किया ।

१. कुल्माषांस्तिलतण्डुलानपि तथा माषांश्च गव्यं दधि ।
त्याज्यं दुग्धमथैणमांसमपरं तस्यैव रक्तं तथा ।।
तद्वत्पायसमेव चाषपललं मार्गं च शाशं तथा ।
षाष्टिक्यं च प्रियङ्ग्वपूपमथवा चित्राण्डजान् सत्फलम् ।।
कौर्मं सारिकगोधिकं च पललं शाल्यं हविष्यं हया ।
वृक्षेस्यान्कृसरान्नमुदमपिना पिष्टं यवानां तथा ।।
मत्स्यान्नं खलु चित्रितान्नमथवा दध्यन्नमेवं क्रमात् ।
भक्ष्याऽभक्ष्यमिदं विचार्यमतिमान् भक्षेत्तथाऽऽलोकयेत् ।।

नक्षत्र दोहद—

निर्विघ्न यात्रा के लिए नक्षत्र भोजनों का विधान :—

१. अश्विनी नक्षत्र में यात्रा करते समय उड़द, जौ आदि का उपयोग करें ।
२. भरणी में तिल, चावल ।
३. कृत्तिका में उड़द ।
४. रोहिणी में गाय का दही ।
५. मृगशिर से गाय का घृत ।
६. आर्द्रा में गाय का दूध ।
७. पुनर्वसु में हरिण का मांस ।
८. पुष्य में हरिण का रक्त ।
९. अश्लेषा में क्षीर ।
१०. मघा में पपीहा का मांस ।
११. पूर्वाफाल्गुनी में हरिण का मांस ।
१२. उत्तराफाल्गुनी में शशक का मांस ।
१३. हस्त में साठी चावल ।
१४. चित्रा में मालकांगनी ।
१५. स्वाति में पूआ ।
१६. विशाखा में चित्र-विचित्र पक्षियों के मांस ।
१७. अनुराधा में उत्तम फल ।
१८. ज्येष्ठा में कछुए का मांस ।
१९. मूल में सारिका पक्षी का मांस ।
२०. पूर्वाषाढ़ा में गोह का मांस ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन उपांगद्वय की संकलन शैली के अनुसार अन्य मान्यताओं के बाद स्वमान्यता का सूत्र रहा होगा ? जो विषम काल के प्रभाव से विच्छिन्न हो गया है—ऐसा अनुमान है।

सामान्य मनीषियों ने इस नक्षत्र-भोजन-विधान को और नक्षत्र गणना क्रम को स्वसम्मत मानने में बहुत बड़ी असावधानी की है।

इसी एक सूत्र के कारण उपांगद्वय के सम्बन्ध में अनेक चमत्कार की बातें कहकर भ्रान्तियाँ फैलाई गई हैं[1]।

इन भ्रान्तियों के निराकरण के लिए आज तक किसी भी बहुश्रुत ने अपने उत्तरदायित्व को समझकर समाधान करने का प्रयत्न नहीं किया है।

इसका परिणाम यह हुआ कि इन उपांगों का स्वाध्याय होना भी बन्द हो गया।

चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति और अन्य ज्योतिष ग्रन्थों का तुलनात्मक चिन्तन :

दशम प्राभृत के

अष्टम प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्र संस्थान

नवम प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्र, तारा संख्या

नक्षत्र स्वामी-देवता :—

चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति में दशम प्राभृत के बारहवें प्राभृत-प्राभृत के सूत्र ४६ में नक्षत्र देवताओं के नाम हैं।

---

२१. उत्तराषाढ़ा में साही का मांस
२२. अभिजित में मूँग
२३. श्रवण में खिचड़ी
२४. धनिष्ठा में मूंग-भात
२५. शतभिषक में जौ की पिष्ठी
२६. पूर्वाभाद्रपद में मच्छी-चावल
२७. उत्तराभाद्रपद में खिचड़ी
२८. स्वाति में दही-चावल

इसी प्रकार दिशा, वार और तिथियों के दोहद में भी धान्य, मांस, फल आदि के विधान हैं। मुहूर्तचिन्तामणिकार ने लिखा है कि—देश-कुल के अनुसार जो भक्ष्य हो उसे खाकर और जो अभक्ष्य हो उसे देखकर यात्रा करे।

१. चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति की प्रस्तावना में स्व० अमोलकऋषिजी म० ने लिखा है—
"ये चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र कैसे प्रभाविक, चमत्कारी हैं व कितने ग्रह है ? यह कुछ जैनों से छिपा नहीं है। बड़े-बड़े महात्मा साधु भी इसका पठन मात्र करते अचकाते हैं, जिन जिनने इसका पठन किया उन उनने इसके चमत्कार देखे ऐसी दंत कथायें भी बहुत सी प्रचलित हैं।
चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति से सम्बन्धित चमत्कार की घटनाओं के दन्त कथाओं की श्रेणी में सूचित कर कल्पित भय का निराकरण तो किया किन्तु नक्षत्र भोजन से सम्बन्धित तथ्यों का रहस्योद्घाटन करके वास्तविकता का दिग्दर्शन नहीं कराया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुहूर्तचिन्तामणि के नक्षत्र प्रकरण में नक्षत्र देवताओं के नाम हैं।

इन दोनों के नक्षत्र देवता निरूपण में सर्वथा साम्य हैं। केवल नक्षत्र गणना क्रम का अन्तर है।

इसी प्रकार दशम प्राभृत के

तेरहवें प्राभृत-प्राभृत में तीस मुहूर्तों के नाम,

चौदहवें प्राभृत-प्राभृत में पन्द्रह दिनों के और रात्रियों के नाम

पन्द्रहवें प्राभृत-प्राभृत में दिवस, तिथियों और रात्रि तिथियों के नाम

सोल्हवें प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्र गोत्रों के नाम

सत्रहवें प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्र भोजनों के विधान

बृहद् दैवज्ञरंजनम्, मुहूर्तमार्तण्ड आदि ग्रन्थों में ऊपर अंकित सभी विषय हैं—शोध निबन्ध लेखक तुलनात्मक अध्ययन करें।

चन्द्र सूत्र—

प्राभृत	प्राभृत-प्राभृत	सूत्रांक	सूत्र संख्या
१०	२२	६३	१
१३	०	७९	१
१४	०	८२	१
			३

सूर्य सूत्र—

प्राभृत	प्राभृत-प्राभृत	सूत्रांक	सूत्र संख्या
१	१	९-१०	२
१	३	१४	१
१	७	१९	१
२	१	२१	१
२	२	२२	१
५	०	२६	१
७	०	२८	१
			८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्र-सूर्य काल प्रमाण सूत्र—

१	१	११	१
१	२	१२-१३	२
१	४	१५	१
१	५	१६-१७	२
१	६	१८	१
१	८	२०	१
२	३	२३	१
३	०	२४	१
४	०	२५	१
६	०	२७	१
८	०	२९	१
९	०	३०-३१	२
१०	२	३३	१
१०	१८	५२	१
१६	०	८७	१
१७	०	८८	१
१८	०	९०	१
१८	०	९७	१
२०	०	१०२	१
२०	०	१०४	१
			२३

चन्द्र-नक्षत्र सूत्र—

प्राभृत	प्राभृत-प्राभृत	सूत्रांक	सूत्र संख्या
१०	४	३६	१
१०	११	४४-४५	२
१०	२२	६२	१

चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र सूत्र—

१०	२२	६०	१
१०	२२	६८-६९	२
११	०	७१	१
१५	०	८४-८५	३

ग्रह सम्बन्धित सूत्र—

२०	०	१०३	१
२०	०	१०६	१
२०	०	१०७	१
			३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नक्षत्र सम्बन्धित सूत्र—

१०	१	३२	१
१०	२	३४	१
१०	३	३५	१
१०	५	३७	१
१०	६	३८	१
१०	८	४१	१
१०	१०	४३	१
१०	१२	४६	१
१०	१६	५०	१
१०	१७	५१	१
१०	२१	५९	१
१०	२२	६१	१
१८	०	९३	१
			१३

तारा सम्बन्धित सूत्र—

प्राभृत	प्राभृत-प्राभृत	सूत्रांक	सूत्र संख्या
१८	०	९६	१
			१

काल प्रमाण सूत्र—

१०	१३	४७	१
१०	१४	४८	१
१०	१५	४९	१
१०	१९	५३	१
१०	२०	५४-५८	४
१२	०	७२-७५	४
१३	०	८०	१

चन्द्र-सूर्य काल प्रमाण सूत्र—

१०	६	३९	१
१०	७	४०	१
१०	२२	६४-६७	४
१३	०	८१-८२	२

चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र काल प्रमाण सूत्र—

१२	०	७६-७८	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रादि पञ्चज्योतिष्क सूत्र—

१५	०	८३	१
१८	०	९१-९२	२
१८	०	९४-९५	२
१९	०	१००-१०१	२

स्थिति सूत्र

१८	०	९८	२

अल्प-बहुत्व सूत्र—

१८	०	९९	१

उपसंहार सूत्र—

२०	०	१०८	१

सूर्य सूत्र—

अध्ययन	उद्देशक	सूत्रांक
८	०	६५५

नक्षत्र सूत्र—

७	०	५८९
९	०	६९४

नक्षत्र स्वामी सूत्र—

२	३	९५

ग्रह सूत्र

२	३	९५
६	०	४८१
८	०	६१३
९	०	६९९

तारा सूत्र—

९	०	६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नक्षत्र तारा सूत्र—

अध्ययन	उद्देशक	सूत्रांक	पृष्ठ	विशेष
				नक्षत्र तारा
३	४	२२७	८९	,,
५	३	४७२	२०३	,,
२	४	१२१	४५	,,
६	०	५३९	२१८	,,
५	३	४७२	२०३	,,
७	०	५८९	२४१	,,
१	०	४७	९	,,
४	४	३८६	१७१	,,

चन्द्र-सूर्य सूत्र सूची—

अध्ययन	उद्देशक	सूत्रांक
२	३	१०५
३	२	१६२
४	१	२७३
४	३	३३८

चन्द्र-नक्षत्र सूत्र—

६	०	५१७
८	०	६५६

नक्षत्र चन्द्र सूत्र—

८	०	६५६
९	०	६६९
१०	०	७८०

चन्द्रादि ज्योतिष्कदेव सूत्र—

२	३	९५
४	२	३०३
५	१	४०१

कालविभाग सूत्र—

२	४	१०६
५	३	४६०
८	०	६२०

प्रज्ञप्ति निर्देश सूत्र—

३	२	१६०
४	१	२७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवायांग

सूर्य के सूत्र

सूर्यमण्डल

१.	सूर्यमण्डलों की संख्या	सम. ६५, सूत्रांक १
२.	सूर्यमण्डलों की संख्या	सम. ८२, सू. १
३.	सूर्यमण्डल प्रमाण	सम. १३, सू. ८
४.	सूर्यमण्डल समांश	सम. ६१, सू. ४
५.	प्रथम सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ	सम. ९९, सू. ४
६.	द्वितीय सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ	सम. ९९, सू. ५
७.	तृतीय सूर्यमण्डल का आयाम-विष्कम्भ	सम. ९९, सू. ६
८.	प्रत्येक सूर्यमण्डल में सूर्य की गति के मुहूर्त	सम. ६०, सू. १
९.	सूर्य का आभ्यन्तर मण्डल में उपसंक्रमण (भरतक्षेत्र से सूर्यदर्शन की दूरी का प्रमाण)	सम. ४७, सू. १
१०.	सूर्य का बाह्यमण्डल में उपसंक्रमण (भरतक्षेत्र से सूर्यदर्शन की दूरी का प्रमाण)	सम. ३१, सू. ३
११.	आभ्यन्तर तृतीयमण्डल में सूर्य का उपसंक्रमण (भरतक्षेत्र से सूर्यदर्शन की दूरी का प्रमाण)	सम. ३३, सू. ४
१२.	सूर्य से ऊपर और नीचे सूर्य का तापक्षेत्र	सम. १९, सू. २
१३.	रत्नप्रभा के ऊपर के सम भू-भाग से ऊपर-की ओर सूर्य की गति का क्षेत्र	सम. प्र. ४६
१४.	सूर्य का परिवार	सम. ८८, सू. १
१५.	उत्तरायण से निवृत्त सूर्य का अहोरात्र-के प्रमाण पर प्रभाव	सम. ७८, सू. ३
१६.	दक्षिणायन से निवृत्त सूर्य का अहोरात्र-के प्रमाण पर प्रभाव	सम. ७८, सू. ४
१७.	उत्तर दिशा में प्रथम सूर्योदय की दूरी का प्रमाण	सम. ८०, सू. ७

समवायांग

चन्द्र के सूत्र

१.	चन्द्रमण्डल का समांश	सम. ६०, सू. ३
२.	कृष्णपक्ष में और शुक्लपक्ष में चन्द्र की हानि-वृद्धि का प्रमाण	सम. ६२, सू. ३
३.	चन्द्र का परिवार	सम. ८८, सू. २

× × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्र और सूर्य के संयुक्त

१. क्षेत्र आभ्यन्तर पुष्करार्ध में चन्द्र-सूर्य	सम. ७२, सू. ५
२. समुद्र कालोदसमुद्र में चन्द्र-सूर्य	सम. ४२, सू. २

× × ×

ग्रहों का सूत्र

१. शुक्र का उदयास्त	सम. १९, सू. ३

× × ×

ग्रह और चन्द्र का संयुक्त सूत्र

१. ध्रुव राहु से चन्द्र के आवृत-अनावृत विभागों का क्रम	सम. १५, सू. ३/४

नक्षत्रों के सूत्र

१. जम्बूद्वीप में व्यवहार योग नक्षत्र	सम. २७, सू. २
२. नक्षत्रों का समांश	सम. ६४, सू. ४
३. पूर्व द्वारवाले नक्षत्र	सम. ७, सू. ८
४. दक्षिण द्वारवाले नक्षत्र	सम. ७, सू. ९
५. पश्चिम द्वारवाले नक्षत्र	सम. ७, सू. १०
६. उत्तर द्वारवाले नक्षत्र	सम. ७, सू. ११

× × ×

चन्द्र और नक्षत्रों के सूत्र

१. चन्द्र के साथ योग करने वाले नक्षत्र	सम. ५६, सू. १
२. चन्द्र के साथ प्रमर्दयोग करने वाले नक्षत्र	सम. ८, सू. ९
३. चन्द्र के साथ पन्द्रह मुहूर्त योग करने वाले नक्षत्र	सम. १५, सू. ५
४. चन्द्र के साथ उत्तर दिशा से योग करने वाले नक्षत्र	सम. ९, सू. ६
५. चन्द्र के साथ द्वयर्द्धक्षेत्र के नक्षत्रों का योगकाल	सम. ४५, सू. ७
६. चन्द्र के साथ अभिजित नक्षत्र का योगकाल	सम. ८, सू. ५

× × ×

ताराओं के सूत्र

१. उपरितन तारागणों का भ्रमण क्षेत्र	सम. ९, सू. ७

नक्षत्र-ताराओं के सूत्र

अश्विनी नक्षत्र तारा संख्या	सम. ३, सू. ११
भरणी नक्षत्र तारा संख्या	सम. ३, सू. १२
कृत्तिका नक्षत्र तारा संख्या	सम. ६, सू. ७
रोहिणी नक्षत्र तारा संख्या	सम. ५, सू. ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृगशिर नक्षत्र तारा संख्या	सम. ३. सूत्र ६
आर्द्रा नक्षत्र तारा संख्या	सम. १, सू. २६
पुनर्वसु नक्षत्र तारा संख्या	सम. ५, सू. १०
पुष्य नक्षत्र तारा संख्या	सम. ३, सू. ७
अश्लेषा नक्षत्र तारा संख्या	सम. ६, सू. ८
मघा नक्षत्र तारा संख्या	सम. ७, सू. ७
पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र तारा संख्या	सम. ४, सू. ८
उत्तराषाढ़ा नक्षत्र तारा संख्या	सम. ४, सू. ९
अभिजित नक्षत्र तारा संख्या	सम. ३, सू. ९
श्रवण नक्षत्र तारा संख्या	सम. ३, सू. २
धनिष्ठा नक्षत्र तारा संख्या	सम. ५, सू. १३
शतभिषक् नक्षत्र तारा संख्या	सम. १००, सू. २
पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र तारा संख्या	सम. २, सू. ५
उत्तराभाद्रपद नक्षत्र तारा संख्या	सम. २, सू. ६
रेवती नक्षत्र तारा संख्या	सम. ३१, सू. ६
उन्नीस नक्षत्रों की तारा संख्या	सम. ९८, सू. ७

व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) में चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति से संबंधित सूत्र

ज्योतिषीदेवों के नामों के सूत्र—

भग० श० ३, उ० ७, सू० ४।४
भग० श० ८, उ० १, सू० १५
भग० श० ८, उ० १, सू० ३१
भग० श० ५, उ० ९, सू० १७

जम्बूद्वीप से स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त सभी द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्कों की संख्या—

भग० श० ९, उ० २, सू० २-५

जीवा० (सू० १७५-१७७) के अनुसार जानने की सूचना।

मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर और बाहर के ज्योतिषियों की उत्पत्ति का प्ररूपण—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ४६-४७

ज्योतिषीदेवों के कर्मक्षय का प्ररूपण—

भग० श० १८, उ० ७, सू० ५१

सूर्य का स्वरूप, अर्थ, प्रभा, छाया और लेश्या का प्ररूपण—

भग० श० १४, उ० ९, सू० १३-१६

उदय, अस्त और मध्याह्न के समय सूर्य की समान ऊँचाई—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय और अस्त के समय सूर्य के दूर तथा मूल में दीखने का कारण—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ३६

सूर्य की त्रैकालिक गति—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ३८

सूर्य की त्रैकालिक क्रिया—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ४३, ४४

सूर्य का ऊर्ध्व, अधो तापक्षेत्र प्रमाण—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ४५

सूर्य का छहों दिशाओं में त्रैकालिक प्रकाश—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ३९-४०

सूर्य का छहों दिशाओं में त्रैकालिक उद्योत—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ४१

उदय और अस्त के समय समान अन्तर से सूर्यदर्शन—

भग० श० १, उ० ६, सू० १

उदय और अस्त के समय सूर्य दर्शन—

भग० श० ८, उ० ८, सू० ३५

उदय के समय प्रकाशित क्षेत्र जितना ही सूर्य का तापक्षेत्र—

भग० श० १, उ० ६, सू० ४

जम्बूद्वीप में सूर्य की उदयास्त दिशायें तथा दिन-रात का प्रमाण—

भग० श० ५, उ० १, सू० ४-६

लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कालोदसमुद्र और पुष्करार्धद्वीप में सूर्य की उदयास्त दिशायें तथा दिन-रात का प्रमाण—

भग० श० ५, उ० १, सू० २२-२७

चन्द्र के उदयास्त का प्ररूपण—

भग० श० ५, उ० १०, सू० १

चन्द्र की अग्रमहिषी संख्या—

भग० श० १०, उ० ५, सू० २८

भग० श० १२, उ० ६, सू० ६, ७

चन्द्र-सूर्य शब्दों के विशेषार्थ—

भग० श० १२, उ० ६, सू० ४-५

चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण—

चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल—

प्रतिचन्द्र प्रतिसूर्य—

भग० श० ३, उ० ७, सू० ४, ५

चन्द्र और सूर्य के काम-भोगों की विशेषता—

भग० श० १२, उ० ६, सू० ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्र और सूर्य के पुद्गलों का प्रकाश—

भग० श० १४, उ० ९, सू० २,३

ज्योतिष्कों के दो इन्द्र—

भग० श० ३, उ० ८, सू० ५

जीवाजीवाभिगम में चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति से संबन्धित सूत्र

चन्द्र परिवार सूत्र — जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९४

× × ×

सूर्य परिवार सूत्र — जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९४

× × ×

नक्षत्रों का सूत्र—
नक्षत्रों के आभ्यन्तर और बाह्य,
ऊपर और नीचे गति करने वाले नक्षत्र

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९६

× × ×

ताराओं के सूत्र
चन्द्र तथा सूर्य के नीचे, सम और ऊपर लघु तथा तुल्य तारा,
ताराओं की लघुता तथा तुल्यता के कारण,

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९३

एक तारा से दूसरे तारा का अन्तर

जीवा० प्र० ३, उ० २, सू० २०१

× × ×

चन्द्र के सूत्र
चन्द्र की अग्रमहिषियां तथा विकुर्वीत देवी परिवार,

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० २०२

× × ×

चन्द्रविमान की सुधर्मासभा में चन्द्र द्वारा भोग भोगने का निषेध तथा निषेध का कारण—

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० २०३

सूर्य के सूत्र—
सूर्य की अग्रमहिषियां तथा विकुर्वीत देवी परिवार
सूर्यविमान की सुधर्मासभा में सूर्य द्वारा भोग भोगने का निषेध तथा निषेध का कारण—

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० २०४

× × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहों का सूत्र— जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० २०४

× × ×

नक्षत्रों का सूत्र— जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० २०४

× × ×

ताराओं का सूत्र— जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० २०४

× × ×

चन्द्रादि पांचों ज्योतिष्कदेवों का गति सूचक सूत्र—
जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से चारों दिशाओं में ज्योतिष्कदेवों की गति का अन्तर—
लोकान्त से ज्योतिष्कदेवों की गति का अन्तर,
इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समभाग से ऊपर की ओर तारा (सब से नीचे का तारा)

सूर्य, चन्द्र एवं ताराओं की गति का अन्तर—

नीचे के तारा से सूर्य का,
सूर्य से चन्द्र का,
चन्द्र से ऊपर के तारा का अन्तर

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९५

× × ×

(१) चन्द्रादि पांचों ज्योतिष्कदेव विमानों का संस्थान सूचक सूत्र—

चन्द्र विमान का संस्थान,
सूर्य विमान का संस्थान,
ग्रह विमानों का संस्थान,
नक्षत्र विमानों का संस्थान,
तारा विमानों का संस्थान,

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९७

× × ×

(२) चन्द्रादि पांचों ज्योतिष्कदेव विमानों के आयाम-विष्कम्भ, बाहल्य और परिधि प्रमाण का सूचक सूत्र—

१. चन्द्र विमान की लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और परिधि
२. सूर्य विमान की लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और परिधि,
३. ग्रह विमानों की लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और परिधि,
४. नक्षत्र विमानों की लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और परिधि
५. तारा विमानों की लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और परिधि

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९७

× × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) चन्द्रादि पांच ज्योतिष्कदेव विमानों की चारों दिशाओं के विमान वाहक देवों का विकुर्वीत स्वरूप और उनकी संख्या—

१. चन्द्र विमान की चारों दिशाओं के विमान वाहक देवों का स्वरूप और उनकी संख्या—
२. सूर्य विमान की चारों दिशाओं के विमान वाहक देवों का स्वरूप और उनकी संख्या—
३. ग्रहों के विमानों की चारों दिशाओं के विमान वाहक देवों का स्वरूप और उनकी संख्या,
४. नक्षत्रों के विमानों की चारों दिशाओं के विमान वाहक देवों का स्वरूप और उनकी संख्या,
५. ताराओं के विमानों की चारों दिशाओं में विमान वाहक देवों का स्वरूप और उनकी संख्या,

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९८

चन्द्रादि पांचों ज्योतिष्क देवों की शीघ्रगति-मन्दगति का अल्प-बहुत्व

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० १९९

× × ×

चन्द्रादि पांचों ज्योतिष्क देवों की अल्पर्धि-महर्धि का अल्प-बहुत्व,

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० २००

× × ×

चन्द्रादि पांचों ज्योतिष्क देवों का अल्प-बहुत्व,

जीवा० प्रति० ३, उ० २, सू० २०६

× × ×

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति से सम्बन्धित सूत्र

जम्बूद्वीप में दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। इनसे सम्बन्धित कुछ सूत्र जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में हैं। उनकी सूची इस प्रकार है—

सूर्य के सूत्र—

१. क–सूर्य मण्डल संख्या,
ख–जम्बूद्वीप में सूर्य मण्डलों की संख्या,
ग–लवणसमुद्र में सूर्य मण्डलों की संख्या,
घ–जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र में सूर्य मण्डलों की संयुक्त संख्या,

जंबू० वक्ष० ७, सू० १२७

× × ×

सर्वाभ्यन्तर सूर्यमण्डल से सर्वबाह्य सूर्यमण्डल का अन्तर,

जंबू० वक्ष० ७, सू० १२८

प्रत्येक सूर्यमण्डल का अन्तर—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १२९

× × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक सूर्यमण्डल के आयाम-विष्कम्भ,
परिधि एवं बाहल्य का प्रमाण—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १३०

× × ×

मन्दर पर्वत से सर्वाभ्यन्तर सूर्यमण्डल का अन्तर,
मन्दर पर्वत से सर्वाभ्यन्तर (आभ्यन्तर द्वितीय)
सूर्यमण्डल का अन्तर—
मन्दर पर्वत से (आभ्यन्तर) तृतीय मण्डल का अन्तर,
इस प्रकार प्रत्येक सूर्यमण्डल का अन्तर,
सर्वबाह्य मण्डल प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि का अन्तर

जंबू० वक्ष० ७, सू० १३१

÷ × ×

सर्वाभ्यन्तर प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि सूर्यमण्डलों का आयाम-विष्कम्भ तथा उनकी परिधि का प्रमाण—

सर्वबाह्य प्रथम, द्वितीय, तृतीय सूर्यमण्डलों का आयाम-विष्कम्भ और परिधि का प्रमाण—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १३२

× × ×

सर्वाभ्यन्तर मण्डलों में तथा सर्वबाह्य मण्डलों में सूर्य .के तापक्षेत्र और अन्धकारक्षेत्र के संस्थान और उनके प्रमाण—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १३५

× × ×

सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सूर्यदर्शन की दूरी प्रमाण—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १३६

× × ×

सूर्य का कालसापेक्ष गतिक्षेत्र—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १३७

सूर्य का कालसापेक्ष क्रियाक्षेत्र —

जंबू० वक्ष० ७, सू० १३८

× × ×

सूर्य का उत्पत्ति क्षेत्र और गति क्षेत्र—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १४०

× × ×

सूर्य का च्यवन विरहकाल व्यवस्था तथा विरह अवधि—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १४१

× × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्योदय, सूर्यास्त की दिशायें—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १५०

× × ×

चन्द्र के सूत्र—
चन्द्रमण्डलों की संख्या,
जम्बूद्वीप में चन्द्रमण्डलों की संख्या,
लवणसमुद्र में चन्द्रमण्डलों की संख्या,
जम्बूद्वीप तथा लवणसमुद्र में चन्द्रमण्डलों की संयुक्त संख्या—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १४२

× × ×

सर्वाभ्यन्तर चन्द्रमण्डल से सर्वबाह्य चन्द्रमण्डल का अन्तर—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १४३

प्रत्येक चन्द्रमण्डल का अन्तर—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १४४

× × ×

प्रत्येक चन्द्रमण्डल का आयाम-विष्कम्भ, परिधि और बाहल्य का प्रमाण—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १४५

× × ×

जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत से सर्वाभ्यन्तर प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि चन्द्रमण्डलों का अन्तर—
जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत से सर्वबाह्य प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि चन्द्रमण्डलों का अन्तर—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १४६

× × ×

सर्वाभ्यन्तर प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि चन्द्रमण्डलों का आयाम-विष्कम्भ और परिधि का प्रमाण—

सर्वबाह्य प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि चन्द्रमण्डलों का आयाम-विष्कम्भ और परिधि का प्रमाण—

जंबू० वक्ष० ७, सू० १४७

× × ×

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के वृत्तिकार ने लिखा है—चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति बहुत बड़े आगम हैं[1]।

इस सूची में जितने सूत्र हैं वे सब चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति से उद्धृत हैं किन्तु इस सूची में अंकित सूत्रों में से अनेक सूत्र उपलब्ध चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति में नहीं हैं। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि वर्तमान में चन्द्र-सूर्यप्रज्ञप्ति के सूत्रों का जो क्रम एवं संख्या है अतीत में उससे भिन्न रही होगी। ●

---

१. इच्चेसा जंबुद्दीवपण्णति—सूरपण्णति वत्थुसमासेणं सम्मत्ता भवइ। इत्येषा—अनन्तरोक्तस्वरूपा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः आद्यद्वीपस्य यथावस्थितस्वरूपनिरूपिका ग्रन्थपद्धतिस्तस्या मस्मिन्नुपांगे इत्यर्थः सूत्रे च विभक्तिव्यत्ययः प्राकृत त्वात्।
सूर्य प्रज्ञप्तिः सूर्याधिकार प्रतिबद्धा पदपद्धतिर्वस्तूनां मण्डलसंख्यादीनां समासः सूर्यप्रज्ञप्तयादि महाग्रन्था पेक्ष या संक्षेपस्तेन समाप्ता भवति।
इच्चेसा इत्यादि व्याख्यानं पूर्ववत् परं सूर्यप्रज्ञप्ति स्थाने चन्द्रप्रज्ञप्तिवाच्या॥

जम्बू० वक्ष० ७, सू० १५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org